Vol.8 March 2015 No.8
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

# ब्रह्मार्पण

# BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

# वीरों का हो कैसा वसन्त

*–सुभद्राकुमारी चौहान*

आ रही हिमालय से पुकार
है उदधि गरजता बार–बार
प्राची पि चम भू नभ अपार;
सब पूछ रहे हैं दिग–दिगन्त
वीरों का हो कैसा वसन्त।

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु वसुधा पुलकित अंग–अंग;
हे वीर दे ा में किन्तु कंत
वीरों का हो कैसा वसन्त।

भर रही कोकिला इधर तान
मारू बाजे पर उधर गान
है रंग और रण का विधान;
मिलने को आए आदि अंत
वीरों का हो कैसा वसन्त।

गलबाहें हों या कृपाण
चलचितवन हो या धनुषबाण
हो रामविलास या दलितत्राण
अब यही समस्या है दुरंत
वीरों का हो कैसा वसन्त।

कह दे अतीत अब मौन त्याग
लंके तुझमें क्यों लगी आग
हे कुरुक्षेत्र अब जाग–जाग;
बतला अपने अनुभव अनंत
वीरों का हो कैसा वसन्त।

हल्दीघाटी के ि ाला खण्ड
ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचंड
राणा ताना का कर घमंड;
दो जगा आज स्मतियाँ ज्वलंत
वीरों का हो कैसा वसन्त।

भूषण अथवा कवि चंद नहीं
बिजली भर दे वह छन्द नहीं
है कलम बँधी स्वच्छंद नहीं;
फिर हमें बताए कौन हन्त
वीरों का हो कैसा वसन्त।

## स्वामी जी और अंग्रेज

स्वामी दयानंद सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक और समाज सुधारक थे। 1855 में हरिद्वार में जब कुंभ का मेला लगा तो उसमें ाामिल होने के लिए स्वामी जी ने आबू पर्वत से हरिद्वार तक पैदल यात्रा की थी। रास्ते में उन्होंने जगह–जगह प्रवचन दिए। एक बार अंग्रेज अधिकारी ने स्वामी जी से कहा– 'अपने व्याख्यान के प्रारंभ से आप जो ई वर की प्रार्थना करते हैं, क्या अंग्रेजी सरकार के कल्याण के लिए भी प्रार्थना कर सकेंगे।' स्वामी जी ने उन्हें निर्भीकता से उत्तर दिया– 'परमात्मा के समक्ष प्रतिदिन मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे दे ावासी विदे ाी सत्ता के बंधनों से जल्दी से जल्दी मुक्त हों।' जनरल को स्वामी जी से ऐसे तीखे उत्तर की आ ाा नहीं थी। इसके बाद सरकार के गुप्तचर विभाग की स्वामी जी और आर्य समाज पर गहरी नज़र बनी रही। उनकी हर गतिविधि और ाब्द का रिकॉर्ड रखा जाने लगा। आम जनता पर उनके असर से सरकार को एहसास होने लगा कि यह बागी फक़ीर और आर्य समाज किसी भी दिन सरकार के लिए खतरा बन सकते हैं। इसलिए स्वामी जी को समाप्त करने के लिए तरह–तरह के षड्यंत्र रचे जाने लगे।

Brahmarpan March 2015 Vol. 8 No.8
फाल्गुन-चैत्र 2071-72 वि.संवत्

# ब्रह्मार्पण
# BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

## CONTENTS

1. वीरों का हो कैसा वसन्त 2
**-सुभद्राकुमारी चौहान**
2. संपादकीय 4
3. सांख्य द र्शन 8
**-डॉ. भारत भूषण**
4. मंगलमय हो नव संवत्सर 9
**-स्व. राधे याम आर्य**
*चैत्र ुक्ल प्रतिपदा नवसंवत्सर 9*
**-गंगा रण आय**
5. भारत का सांस्कृतिक पर्व होली 12
6. प्रका वीर ास्त्री : एक अंतरंग परिचय 15
**-वि वनाथ**
7. भगतसिंह ही हीद-ए-आज़म क्यों? *19*
**-श्री भगवान सिंह**
8. आजाद हिन्द फौज के सेनापति : नेताजी सुभाष 23
9. पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का योगाभ्यास25
**-डॉ. रामप्रका ा**
10. वेत वस्त्रों में संन्यासी-महात्मा हंसराज प्रतिपादित पञ्चसकार 30
**-डॉ. भवानीलाल भारतीय**
11. Balance Education Open Minds, Open Society 33
***-Sarvapalli Radhakrishnan***
12. Balance Your Five Elements
***- Jagmohan Sachdeva*** 34

**BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION**
C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha
Sh. B.D. Ukhul
*Secretary*
Dr. B.B. Vidyalankar
*President*
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
*V.President*
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
*Treasurer*

**Editorial Board**
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

***Printed & Published by***
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
**Price : Rs. 10.00 per copy**
**Annual Subscription : Rs. 100.00**

# संपादकीय

## भ्रष्टाचार लोकतन्त्र के लिए अभि ाप

भ्रष्टाचार ाब्द का अभिप्राय समाज में किसी भी प्रकार के भ्रष्ट आचरण से है, परन्तु आजकल इसका प्रयोग रि वतखोरी या घूसखोरी के लिए होता है। उपनिषद् के राजर्षि अ वपति ने अपनी राज्य व्यवस्था का वर्णन करते हुए कहा था कि मेरे राज्य में किसी भी प्रकार के भ्रष्ट लोग नहीं है, छंदोग्य उपनिषद् का एक लोक है–

**न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।**
**नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।**

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, न कोई कृपण (कंजूस) ही है जो दान न देता हो, न ाराबी है, न कोई ऐसा व्यक्ति है जो प्रतिदिन नियमपूर्वक यज्ञ–हवन आदि धार्मिक कृत्य न करता हो। कोई अविद्वान् अर्थात् अनपढ़ भी नहीं है। न ही कोई व्यभिचारी है तो कोई व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है? इससे स्पष्ट है उस राजा के राज्य में आज जिस प्रकार भ्रष्टाचार व्याप्त है उसका अभाव था।

भ्रष्टाचार लोकतंत्र का सबसे बड़ा ात्रु है। यह समाज में ऐसे घुन के समान है जो उसे भीतर से खोखला कर देता है। भ्रष्टाचार के कारण स्वराज्य अर्थहीन बन जाता है। समाज के नैतिक मूल्य नष्ट हो जाते हैं। लोगों को न्याय नहीं मिलता। समाज में सर्वत्र अराजकता फैल जाती है। स्वराज्य के बदले रि वतखोरी का बोलबाला हो जाता है।

महर्षि दयानन्द लोकतंत्र के बड़े समर्थक थे। उन्होंने भ्रष्टाचार का दढ़ता से विरोध किया था। उन्होंने मनुस्मति के आधार पर कहा था कि जो राजपुरुष प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाते समय उनसे धन आदि लेकर पक्षपात का व्यवहार करते हैं, सरकार को उनका सर्वस्व हरण करके राज्य से

निष्कासित कर देना चाहिए। मनुस्मति 7–124 में कहा है–

**ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गह्णीयुः पापचेतसः।**
**तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्।।**

दिनांक 19 मार्च 1882 को स्वामी जी ने मुम्बई आर्यसमाज के प्रवचन में मद्यपानादि व्यसनों के विरुद्ध लड़ने के लिए निवेदन किया था। फिर 1, जून को उन्होंने उपस्थित जनों से चोरी, बेइमानी, मिलावटखोरी, रि वतखोरी आदि बुराइयों को मिटाने के लिए आगे आने का आग्रह किया था।

## मेरठ आर्य महासम्मेलन में प्रस्ताव

सन् 1951 में मेरठ में सातवाँ सार्वदेि ाक आर्य सम्मेलन बैरिस्टर विनायकराव जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था। उस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित करके आर्यों से भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने का नि चय किया गया था। परन्तु ऐसे आंदोलनों में भाग लेने से कई तरह के खतरे भी सामने आते हैं, बहुत से ाक्ति ाली लोग दु मन बन जाते हैं। इसलिए ऐसी दुष्ट ाक्तियों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए आत्मबल की आव यकता होती है। जिनके पास नैतिक बल होता है उन्हीं के पास आत्मबल भी होता है। यदि व्यक्ति इस दि ाा में प्रयत्न करते भी हैं तो उन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। लेकिन भ्रष्टाचार के विरुद्ध समय–समय पर लोगों की आवाजें उठती रही हैं। प्रधानमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा, श्री जयप्रका ा नारायण आदि नेताओं ने भ्रष्टाचार के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए प्रयास किया परन्तु इनके प्रयास उनके जाने के बाद रुक गए। बाद में यत्र–तत्र कुछ नागरिक संगठनों ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष किया परन्तु जनसामान्य का सहयोग नहीं मिला। आज के वातावरण में कोई भी उद्योग, व्यापार या सरकारी काम बिना रि वत के नहीं होता, अतः लोग भ्रष्टाचार के साथ समझौता कर लेते हैं। इसलिए जब कभी भी आप भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाएँगे तो आपकी

बात को सुनने वाला ाायद ही कोई मिले। परन्तु यह कटु तथ्य है कि भ्रष्टाचार स्वराज्य और लोकतंत्र के लिए अभि ााप है।

हमारे दे ा के लोग बहुत नादान हैं। हर व्यक्ति यही सोचता है कि बस उसका काम हो जाए। वह स्वयं और उसके बीवी-बच्चे सुरक्षित रहें। दे ा और समाज के सामने जो खतरा है उसकी उसे कोई चिंता नहीं होती। वह यह नहीं सोचता कि जब दे ा और समाज सुरक्षित नहीं होगा तो वह कैसे सुरक्षित रह सकता है। जब समाज सुरक्षित नहीं तो वह और उनके बीवी-बच्चे जिनके लिए वह रि वत देकर धन-दौलत कमा कर छोड़ जाना चाहता है, वे कैसे सुरक्षित रहेंगे?

भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए कठोर कानून बनाए जाने चाहिए ताकि समाज से इस कैंसर को दूर किया जा सके। आज समाज ने भ्रष्टाचार को ि ाष्टाचार के रूप में मान्यता दे रखी है। इस परिस्थिति को, इस चिन्तन को बदलना होगा। यदि भ्रष्टाचार निषेध कानून बन भी जाएँ तब भी वे भ्रष्टाचार के उन्मूलन में कहाँ तक सफल होंगे, कहना कठिन है। कहा भी है-

**"प्रवत्तिरेषा भूतानां निवत्तिस्तु महाफलः।"**

इस विषय में हमारे सन्देह के कई कारण हैं जिन पर विचार करना आव यक है-

1. अभी दे ा में कानून बनाने की जो पद्धति है वह अंग्रेजों से विरासत में मिली है जिसकी ाब्दावली हमे ाा संदिग्ध होती है। अतः इससे कानून के पंडितों (वकीलों) को ही लाभ होता है।

2. दे ा में रि वतखोरी इतने व्यापक स्तर पर विद्यमान् है कि लोग निर्लज्ज होकर कह देते हैं कि हम प्याज-लहसुन तो खाते नहीं, लेकिन रि वत जरूर खा लेते हैं।

3. भ्रष्टाचार के मामले में अपराधी को पकड़ना बहुत मु ि कल होता है, क्योंकि इसमें घूस देने और लेने वाले दोनों ही खु ा होते हैं, फिर ि ाकायत कौन करेगा? बिना ि ाकायत

के किसी भी अपराधी के विरुद्ध कार्रवाई नहीं की जा सकती। इसीलिए भारतीय दण्ड संहिता –161 (IPC-161) बेअसर हो चुकी है। अतः यदि कुछ नए कानून बना भी दिए जाएँ तो न जाने उनका क्या स्वरूप होगा? अफसर ाही कानून का मसौदा बनाते समय हमे ा अपनी बिरादरी का ध्यान रखती है।

4. कानून भी इस दष्टि से पक्षपातपूर्ण होता है क्योंकि इसमें केवल सरकारी अधिकारी ही आते हैं। केवल छोटी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, बड़ी मछलियाँ बच निकलती हैं। दे ा में कानून सब पर समानरूप से प्रभावी होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए।

**भ्रष्टाचार–वद्धि के मुख्य कारण**

इंडिया इन बाँडेज (India in Bondage) नामक पुस्तक के लेखक जे. टी. संडलैंड का कहना है कि भारत में अंग्रजों ने भ्रष्टाचार का जाल बिछाया था। परन्तु भारत के स्वतंत्र होने के बाद यहाँ अंग्रेज तो नहीं है परन्तु अब यहाँ भ्रष्टाचार की वद्धि में सैक्युलरिज्म का बड़ा हाथ है। इसके कारण हमारी प्राचीन नैतिक परंपराओं पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि रि वतखोर चोर हैं। हमारे प्राचीन धर्म ाास्त्र ने रि वतखोरों को चोरों की पंक्ति में रखा है, कहा भी है–

**प्रका ामेतत्तास्कर्यं उत्कोचक चौरपंथिका वंचकाःकितवस्तथा।।**

**(मनुस्मति 9–256,258)**

अन्त में, समाज में नैतिक और समाज के कल्याण की दष्टि से सब को सम्मिलित रूप से प्रयास करना चाहिए ताकि भ्रष्टाचार के रोग से समाज को मुक्त कर उसे स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जा सके।

# सांख्य द र्न (अध्याय-1, सूत्र-86)

*-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार*

चाहे उत्पत्ति से पहले कार्यसत् हो, परन्तु अभिव्यक्ति के बाद जब फिर कार्य अनभिव्यक्त अवस्था में पहुँचता है, जिसे कार्य का ध्वंस या नष्ट होना कहा जाता है। प्र न होता है कि क्या उस अवस्था में कार्य का पूरी तरह ना ा नहीं हो जाता? इसका समाधान सूत्रकार अगले सूत्र में करते हैं, सूत्र है-

**ना ाः कारणलयः।।86।।**

**अर्थ-** (कारणलयः) कारण में लय हो जाना (ना ाः) कार्य का ना ा है।

**भावार्थ-** किसी कार्य का अपने कारण में लय या समाहित हो जाना उसका ध्वंस या ना ा कहलाता है। वास्तव में, किसी कार्य का पूरी तरह ना ा या अभाव कभी नहीं होता; क्योंकि अभिव्यक्ति अवस्था में आने के बाद जब वह अपने उस रूप को छोड़ देता है तब या तो उससे किसी दूसरे कार्य की अभिव्यक्ति हो जाती है या वह अपनी कारण अवस्था में चला जाता है। इसी अवस्था को हम उस कार्य का ना ा कहते हैं जब कि वह अपने किसी दूसरे रूप में बना रहता है। इस प्रकार हर वस्तु की कारणरूप में सत्ता तथा अनभिव्यक्ति की अवस्था में कार्यरूप की असत्ता स्पष्ट होती है।

***सी-2ए, 16/90 जनकपुरी,***
***नई दिल्ली-10058***

*अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और उन्हें अपने श्रम से सींच-सींच कर महाप्राण बनाते हैं- -महर्षि अरविंद*

*अन्न बल से श्रेष्ठ है। राष्ट्र में अन्न नहीं होगा तो बल कहाँ से आएगा। पहले अन्न का प्रबंध करना होगा, उसके बाद ज्ञान, दान प्रबंध हो सकेगा। उपनिषद*

*दबाव से अनु ाासन नहीं सीखा जा सकता। -महात्मा गाँधी*

## मंगलमय हो नव संवत्सर

*–स्व. राधे याम आर्य*

वेद–भानु की प्रखर र ि मयाँ मुखरित हों नव स्यात।
वेदों की महिमा से मंडित आए नया प्रभात।
घनीभूत हो गहन तमिस्रा क्षत–विक्षत हो वसुधा की।
अभिषिक्त हो पूर्ण धरा यहाँ बरसे धार सुधा की।
मिटे धरित्री के प्रांगण पर, छाया है जो घना कुहासा।
नव आलोक मिले जन–जन को, खिले मनुजता की नव आ ा।
कटुता कल्मषता का भू से, हटे पुनः सम्पूर्ण अँधेरा।
सत्यं–ि ावं सुन्दरता पूरित आये भू पर नया सबेरा।
मानवता की विजय पताका, फहरे लेकर मानव हित।
सुख सम्पदा सफलता सरसे, हो दानववत्ति पराजित।
सत्य धर्म के पथिक बनें हम, आलोकित हो मार्ग हमारा।
ज्योतिर्मय हो वसुधा सारी, ज्योतिर्मय हो राष्ट्र हमारा।
ौर्यवान् हों, धैर्यवान् हों, वीरव्रती हों सारे लोग।
खु ियाँ ही खु ियाँ हों, भू पर, सारे मानव रहें नीरोग।
सदा लड़े अन्याय अनय से आर्य बनें धरती के वासी।
मंगलमय हो नया वर्ष यह, सुखी बने सब भूमिवासी।।

## चैत्र ुक्तपक्ष प्रतिपदा हमारा नव–संवत्सर

*–गंगा ारण आर्य*

वि व में मानव जीवन के इतिहास की कालगणना में प्राचीन परम्परा ही वैज्ञानिक नजर आती है। संवत् चाहे किसी नाम से तथा कहीं भी आरम्भ किए गए हों किन्तु इन सबका आरम्भ करने की परम्परा एक ही दिन चैत्र ुक्लपक्ष की प्रतिपदा से रही है। नए कार्यों का आरम्भ भी नववर्ष की प्रतिपदा से ही करने की परम्परा आज भी बनी हुई है। नव संवत्सर के साथ ही भारत का प्रत्येक कार्य चैत्र माह के प्रथम दिन (इस वर्ष 21 मार्च को) प्रारम्भ होता है। चैत्र माह से ही वित्तवर्ष प्रारंभ होता है। लेकिन हमारे यहाँ नववर्ष 1 जनवरी को मनाया जाता है। हमारे दे ावासियों की गुलामी की मानसिकता की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उससे मुक्ति पाना सहज नहीं। बड़ी हैरानी की बात तो यह कि गुलामी के दौर में स्वराज्य की लड़ाई के दिनों में भी सब कुछ विदे ाी हो

गया। आर्यावर्त, भारत दे ा का कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि भारतीय संवत्सर (नववर्ष) जो कि दुनिया का सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ एवं नैसर्गिक संवत्सर है को झुठलाकर 1 जनवरी (विदे ाी नववर्ष) को हर्षोल्लास के साथ मनाने में हम गर्व ही अनुभव नहीं करते, बल्कि राजनेता भी इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। राजनेताओं को स्पष्ट रूप से पता है कि दे ा की वित्तीय व्यवस्था को संचालित करने वाले वित्तीय वर्ष का प्रथम दिन मार्च-अप्रैल में होता है फिर भी अंग्रेजियत का भूत इतना चढ़ा है कि 1 जनवरी को ही नववर्ष की ाुभकामनाएँ एवं बधाइयाँ देते हैं। एक माह पूर्व ही विदे ाी नववर्ष की तैयारियाँ भारत में ाुरू कर दी जाती हैं। करोड़ों रुपये का व्यय इस उत्सव के लिए किया जाता है। होटल, रेस्तराँ इत्यादि अपने-अपने ढंग से इसके आगमन की तैयारियाँ करने लगते हैं। अंग्रेजी के कार्डों की भरमार के साथ ाराब की दुकानों की भी चाँदी होती हैं। 31 दिसम्बर की आधी रात तक नववर्ष के स्वागत में बच्चे-बूढ़े और नौजवान पलके बिछाए बारह बजने का इंतजार करते हैं। इस दिन ाराब और ाबाब पूरे यौवन पर होता है, विलासिता का नंगा नाच होता है, घड़ी की सुइयाँ 12 पर आते ही फोन की घंटियाँ बजनी ाुरू हो जाती हैं। आति ाबाजी व पटाखे छुड़ाए जाते हैं। लड़के ही नहीं, लड़कियाँ भी जाम को एक नए अंदाज में होठों से लगाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती और बहुत बड़े हादसों को न्यौता देती हैं। क्या आजादी से पूर्व हमारी यही संस्कृति थी? आज हमारी वे ाभूषा, भाषा, खान-पान, आचार-विचार या यूँ कह लो कि भारतीय संस्कृति के नाम पर हमारे दे ा के नवयुवक-युवतियों के लिए कामुक नाच-गानों को देखने के सिवाय कुछ भी ाेष नहीं रह जाता।

आज हमें स्वाधीन हुए 68 वर्ष हुए हैं और हम अपनी संस्कृति-सभ्यता की घोर उपेक्षा कर रहे हैं, अभी भी राजनैतिक गुलामी हमारे सिर पर सवार है।

प्राच्य संस्कृति की तुलना में वि व के किसी भी कोने में इतनी आद र्ा संस्कृति का उदाहरण मिलना मुि कल है। नया वर्ष ईसाइयों के यहाँ जिसे 'न्यू ईयर डे' कहते हैं, 1 जनवरी को होता है। भारत में स्वाधीनता से पूर्व इसका उतना महत्व नहीं था। आज तो इसके पीछे गाँवों से लेकर ाहरों तक के बच्चों, बड़ों, माताओं, बहनों के दिमागों में पागलपन सवार होता है।

पि चमी सभ्यता की धूल हमारे ऊपर छाई हुई है। वि ोष बात यह है कि ये धूल ऐसे ही नहीं छाई इसके पीछे भारतीय संस्कृति व सभ्यता का सत्याना ा करने के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरु ने अंग्रेजियत को बरकरार रखने की ार्त को सत्ता हस्तांतरण के समय स्वीकार किया था जिसका दुष्परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं।

यह 21वीं ाताब्दी ईस्वी सन् के अनुसार है। यदि सष्टि संवत् की दष्टि से देखें तो सष्टि को बने हुए 1 अरब 96 करोड़ 08 लाख 53 हजार 114 वर्ष हो चुके हैं और 115 वाँ वर्ष प्रारंभ हो गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि करोड़ों ाताब्दियाँ हमने बिताईं और लाखों ाताब्दियाँ आने वाली हैं। इतने लम्बे इतिहास को झुठलाकर संसार को केवल मात्र 20 गिनी चुनी ाताब्दी पुराना कहना अपने आप में बड़ी भारी भूल है और ई वर की व्यवस्थाओं को नकारने का प्रयास है। सष्टि के रचयिता परमपिता परमात्मा ने वनस्पति एवं सम्पूर्ण जीव-जगत की रचना करने के उपरान्त यहाँ तक कि छहों ऋतुओं को उत्पन्न कर पथ्वी माता को दुल्हन की तरह सजाकर तत्प चात् मनुष्य को उत्पन्न किया, क्योंकि ई वर की सारी ही कृतियों में मानव सर्वश्रेष्ठ कृति है। पथ्वी माता के आँचल में मनुष्य ने सर्वप्रथम अपने लोचन खोले, उस समय दिसम्बर की कड़कती ठण्ड नहीं बल्कि बसन्त ऋतु अपनी सुन्दरतम आभा बिखेर रही थी। समझने की बात यह है कि कोई भी इंजीनियर जब इंजन या किसी म ाीन का निर्माण करता है तो साथ में जानकारी के लिए एक परिचय-पुस्तिका भी देता है, जिसमें उसकी सम्पूर्ण जानकारी होती है। इसी प्रकार जब उस सर्व ाक्तिमान महा इंजीनियर ने सष्टि रूपी म ाीन का निर्माण किया, तब 'वेद' रूपी ज्ञान चार महामानवों (अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा) के अन्तःकरण में दिया। वेद सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। वेद ज्ञान के आधार पर हमारे प्राचीन महा-मनीषियों ने आदि सष्टि से लेकर आज तक हर पदार्थ का विवरण दिया है। आदि सष्टि से ही आर्यों में चैत्र मास ाुक्लपक्ष की प्रतिपदा को ही नव वर्ष दिवस के रूप में मनाने की प्रथा प्रचलित है, मुस्लिम राज्य में आर्यों की संस्थाएँ अस्त-व्यस्त होने पर भी यह परंपरा बनी हुई थी। वस्तुतः चैत्र ाुक्ल प्रतिपदा ही भारतवर्ष का नवसंवत्सर दिवस है।

# भारत का सांस्कृतिक पर्व होली

फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाये जाने वाले पर्व होली का प्राचीन नाम "वासन्ती नवसस्येष्टि" है। यह पर्व वसन्त ऋतु के आगमन पर मनाया जाता है। चैत्र कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को एक दूसरे के चेहरे पर रंग लगाकर या एक दूसरे पर रंग डाल कर तथा परस्पर मिष्ठान्न का आदान-प्रदान कर इस पर्व को मनाने की परम्परा चली आ रही है। यह भी कहा जाता है कि इस पर्व के दिन पुराने मतभेदों, वैमनस्य व ात्रुता आदि को भुलाकर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का आरम्भ किया जाता है। कुछ-कुछ कहीं आ ानुरूप होता भी है। सर्वत्र रंग-बिरंगे फूलों के खिले होने से वातावरण भी रंगीन होता है। इस कारण वासन्ती नवसस्येष्टि, या होली को रंगों का पर्व भी कहा जाता है। वसन्त ऋतु भारत की छह ऋतुओं का राजा है। वसन्त ऋतु में ीत ऋतु का अवसान हो जाता है और वायुमण्डल ीतोष्ण जलवायु वाला होता है। वक्षों में सर्वत्र हरियाली दष्टिगोचर होती है और नाना प्रकार के फूल व हरी पत्तियाँ सर्वत्र दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने किसी वि ोष अवसर पर किसी महनीय उद्दे य से अपना श्रंगार किया है। यह श्रंगार वसन्त ऋतु व चैत्र के महीने से आरम्भ होने वाले नवसंवत्सर का स्वागत करने के लिए ही किया जा रहा प्रतीत होता है। पला ा के वक्षों पर लाल फूलों से लदी हुई डालियाँ ोभायमान होकर कहती हैं कि तुम भी हमारा अनुसरण कर अपने जीवन को विभिन्न रंगों से रंग कर नवीन आभा भर लो। प्रकृति के इस स्वरूप को देखकर प्रसन्न मन से व्यक्ति कह उठता है कि हे ई वर तुम महान हो। नाना प्रकार के फूलों, फलों, पत्तियों व वनस्पतियों से अलंकृत सारी सष्टि को देखकर भी यदि मनुष्य इन सबके रचनाकार को अनुभव व प्रत्यक्ष नहीं करता तो ऐसे व्यक्ति जड़-बुद्धि हैं। भिन्न-भिन्न रंगों के पुष्पों की छटा व सुगन्धि वातावरण में फैल कर सन्दे ा दे रही होती है कि तुम भी भिन्न-भिन्न रंगों व सुगन्धित अर्थात् विविध गुणों को जीवन में धारण करो, जो

आकर्षक हो तथा जिससे जीवन पुष्पों की भाँति प्रसन्न, खिला-खिला तथा दूसरों को भी आकर्षित व प्रेरणा देने वाला हो। प्रकृति के ये विभिन्न रंग ई वर से ही तो प्रस्फुटित हो रहे हैं जिससे अनुमान होता है कि व्यक्ति को भी निरा एकान्त सेवी न होकर समाज के साथ मिल कर अपनी प्रसन्नता को विविध रंगों के द्वारा अभिव्यक करना चाहिये। ऐसे ही कुछ मनोभावों को होली के फाग वाले दिन लोग क्रियान्वित करते हुए दिखते हैं। होता यह है कि त्यौहार के दिन कुछ व्यक्ति मदिरापान करते हैं। मदिरापान जीवन को विवेकहीन बनाकर पतन की ओर ले जाने वाला होता है। यह होली मनाने का अप्र ास्त तरीका है।

हम देखते हैं कि होली पर पूर्णिमा वाले दिन देर रात्रि को होलिका दहन करते हैं। बहुत सारी लकड़ियों को एक स्थान पर एकत्रित कर पूजा-अर्चना कर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी जाती है। होली को इस रूप में जलाना किसी प्राचीन लुप्त प्रथा की ओर संकेत करता है। सष्टि के आरम्भ से ही अग्निहोत्र-यज्ञ करने की प्रथा हमारे दे ा में रही है। आज भी यह यज्ञ आर्यसमाज मन्दिरों व आर्यो के घरों में नियमित रूप में किये जाते हैं। पूर्णिमा व अमावस्या के दिन पक्षेष्टि यज्ञ करने का प्राचीन ाास्त्रों में विधान है जिन्हें द र्ा व पौर्णमास नामों से जाना जाता है। जो कार्य परिवार की ईकाई के रूप में किया जाता है वह स्वाभाविक रूप से छोटा होता है तथा जो सामूहिक स्तर पर किया जायेगा वह बहतस्वरूप वाला होगा जिससे उसका प्रभाव परिमाण के अनुरूप होगा। होली का दिन पूर्णिमा का दिन होता है। फाल्गुन के महीने में इस दिन किसानों के खेतों में गेंहूँ की फसल लहलहा रही होती है। चने और गेंहूँ की बालियों में दाने पूरी तरह बन चुके होते है, अब उनको सूर्य की धूप चाहिये जिससे वह पक सकें। इनके भुने हुए दानों को होला कहते हैं। कुछ दिन बाद इनकी फसल पक कर तैयार हो जायेगी और उसे काटकर किसान

खलिहानों में सँभालेंगे। इस संग्रहीत अन्न का पूरे वर्ष उनका परिवार व दे ावासी उपभोग करेंगे जिससे सबको बल, ाक्ति, ऊर्जा, आयु, सुख, प्रसन्नता व आनन्द की उपलब्धि होगी। गेंहूँ की बालियाँ अथवा होलों को पूर्णिमा के यज्ञ में आहुतियाँ देने से वह अग्नि देवता द्वारा संसार के समस्त प्राणियों व देवताओं को पहुँच जाती हैं और देवताओं का भाग उन्हें देने के बाद कृषक व अन्य लोग उसका उपयोग व उपभोग कर सकेंगे। प्राचीन काल में इस पर्व को नवसस्येष्टि कहा जाता था। आज के दिन होना तो यह चाहिये कि होली का स्वरूप सुधारा जाये। होली रात्रि में न जलाकर दिन में 10-11 बजे के बीच गाँव-मोहल्ले के सभी लोगों की उपस्थिति में एक स्थान पर बहत यज्ञ के अनुष्ठान के रूप में आयोजित की जाये। यज्ञ के अनन्तर सभी स्त्री-पुरुष मिलकर एक दूसरे को ाुभकामनायें दें और अपनी ओर से मिष्ठान्न वितरित करें। वहाँ एक बड़ा सहभोज या लंगर भी होली या नव सस्येष्टि पर्व के उपलक्ष्य में किया जा सकता है।

समय के साथ-साथ कुछ लोगों के साधन बहुत बढ़ गये हैं। अधिकां ा प्रजाजन, माध्यम श्रेणी के व साधनहीन हैं। धनी हर कार्य में, दिखावे की अपनी कृत्रिम मानसिक प्रकृति व रुतबे के लिए, प्रभूत धन व्यय करते हैं। अन्य माध्यम व निम्न वर्ग वाले इनका अन्धानुकरण करते हैं। इस सब के कारण अज्ञान व अन्धकार ने पर्वों की मूल भावना की विस्मत कर दिया है। गेंहूँ के दानों से युक्त बालियाँ समस्त मनुष्य समाज के उत्कर्ष के लिए आव यक, अपरिहार्य व महत्वपूर्ण हैं।

होली के दिन फाल्गुन मास समाप्त होता है तथा चैत्र मास के कृष्ण पक्ष का आरम्भ होता है। चैत्र मास के ाुक्ल पक्ष से नया वैदिक संवत्सर आरम्भ होता है। हमें लगता है कि होली का पर्व पुराने वर्ष की पूर्णिमा के दिन बहत अग्निहोत्र-यज्ञ से विदाई देकर चैत्र कृष्ण प्रतिपदा के दिन एक प्रकार से नये वर्ष के स्वागत के पर्व भी है।

# प्रका ावीर ाास्त्री : एक अंतरंग परिचय

*–वि वनाथ*

*उपप्रधान, डी.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी*

प्रका ावीर ाास्त्री जी को पहली बार सुनने का अवसर मुझे 1954–55 में दिल्ली में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर चाँदनी चौक में, फव्वारे के पास मिला था। उन दिनों उनके ओजस्वी भाषणों की धूम मचनी प्रारंभ हुई थी। मैं भीड़ की अन्तिम पंक्ति में यह सोच कर खड़ा था कि कुछ देर उन्हें सुन कर लौट जाऊँगा, परन्तु उनके भाषण ने तो ऐसा मंत्रमुग्ध किया कि लगभग एक घंटा मैंने खड़े रहकर, मानो सम्मोहित होकर, उनका भाषण सुना। उनकी वाणी में सरस्वती का निवास था, वाक्यविन्यास बहुत सुन्दर और ाब्द धाराप्रवाह अजस्र गति से निकल रहे थे। विषय का प्रतिपादन उन्होंने इतने प्रभावी ढंग से किया कि सभी श्रोता अपने–अपने स्थान पर मंत्रमुग्ध होकर बैठे रहे। उन्हें सुनते समय मुझे सहसा डॉ. वासुदेव ारण अग्रवाल का ध्यान हो आया जिन्हें गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के वार्षिक अधिवे ान में कुछ वर्ष पहले "वेदों में विज्ञान" विषय पर बोलते सुना था। उन दिनों हिन्दी के ाब्द–सामर्थ्य के विषय में मेरी धारणा अच्छी नहीं थी। मैं यह मानता था कि वैज्ञानिक विषय पर अंग्रेजी में ही प्रामाणिक ढंग से बात की जा सकती है। हिन्दी के प्रति मेरी हीनभावना समाप्त हुई डॉ. अग्रवाल के भाषण से, जिसमें उन्होंने ाुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया था, बिना अंग्रेजी का एक ाब्द बोले। "वेदों में विज्ञान" पर इतनी सहज, सरल ौली में व्याख्या की कि मेरी तरह अन्य श्रोता भी अभिभूत हुए होंगे। डॉ. वासुदेव ारण अग्रवाल की तरह प्रका ावीर जी को भी माँ ाारदा का वरदान प्राप्त था। उस रात के उनके भाषण की स्मति आज तक मन में बसी है। कालान्तर में प्रका ावीर जी के निकट आने का, उनके साथ काम करने का, उनकी कार्य ौली को देखने का अवसर मिला। ऊँचा कद, गौर वर्ण, तेजस्वी चेहरा, ाुभ्र सफेद खादी का परिधान और उस पर उनकी वि ाष्ट भाषण ौली और भाषा

पर पूरा अधिकार। इतने सारे गुण एक ही व्यक्ति में विरले ही देखने को मिलते हैं। सोचता हूँ कि उनके पास ऐसा कौन-सा मंत्र था जिससे वे पहली बार ही मिलने पर दूसरे व्यक्ति को अपना बना लेते थे। उनके साथियों और मित्रों का दायरा बहुत वि ाल था। सभी अपनी जगह उनके साथ अपना वि ोष अंतरंग सम्बन्ध मानते थे। उनकी इस सर्वप्रियता का भेद यही था कि वे प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति को अत्यन्त आदर, वि वास और प्रेम देते थे। उनकी सरल मुस्कान, और सहज स्नेह सबको व ा में कर लेता था। अपनी बात कहूँ, कई बार सोचता था कि मुझे ाास्त्री जी इतना अधिक आदर और स्नेह क्यों देते हैं? मैंने तो उनके लिए कुछ वि ोष नहीं किया। सम्भवतः यही मनःस्थिति उनके अन्य परिचितों की भी होगी।

वे सम्बन्ध बनाने में वि वास रखते थे। जिस व्यक्ति या परिवार में एक बार नाता जुड़ता उसे सहेज कर रखते और उसका संवर्धन करते। प्रसिद्ध उद्योगपति मोहन मीकिन्स के डायरेक्टर कर्नल वेदरत्न की अचानक वायुयान दुर्घटना में दुःखद मत्यु हो जाने पर (उनके ाोक-संतप्त परिवार के निकट सम्पर्क में तो थे ही) जब यह प्रसंग आया कि उनकी स्मति में कोई स्मारक बनाया जाए, तो ाास्त्री जी ने उनके परिवार को यह सुझाव दिया कि साहित्य से अधिक स्थायी कोई स्मारक नहीं होता, और यदि वेदों के प्रचार-प्रसार में संकल्पित धनरा ि लगायें तो उससे अच्छा धन का उपयोग नहीं हो सकता। विचार-विनिमय के फलस्वरूप यह नि चय हुआ कि चारों वेदों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रका ित किया जाए और उसके निमित्त धनरा ि देने का संकल्प किया गया। संयोग से दिवंगत पुण्यात्मा का नाम भी वेदरत्न था। उन दिनों डॉ. जी.एल. दत्ता, डीएवी कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान थे। डीएवी के वि ाल परिवार और उनके छात्रों में उनके प्रति बड़ी सम्मान की भावना थी। मुझे वह दिन स्पष्ट याद है जब

डॉ. दत्ता, प्रका ावीर ाास्त्री और मैं एक दो अन्य साथियों को साथ लेकर मेजर कपिल मोहन के पूसा रोड स्थित निवास पर इस प्रसंग में गये थे और उन्होंने तत्काल 10 लाख रुपये की रा ि इस कार्य के लिए दी थी और वेद प्रतिष्ठान की नींव डाली गई थी। साथ ही कपिल मोहन जी ने यह भी कहा था कि "मैं तो इस विषय में कुछ जानता नहीं हूँ। प्रका ावीर ाास्त्री जी विद्वान् हैं, उनका आदे ा है जिसका पालन कर रहा हूँ। वे जैसे चाहें, इस धनरा ि का उपयोग करें।" आज यदि चारों वेदों का सरल ाुद्ध अंग्रेजी में अनुवाद, बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रका ित होकर 18 खण्डों में उपलब्ध है, तो उसका अधिकां ा श्रेय प्रका ावीर ाास्त्री जी को जाना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण कार्य डी.ए.वी. के तत्वावधान में "वेद प्रतिष्ठान" के अन्तर्गत सम्पन्न हुआ। वेदों के अंग्रेजी अनुवाद में दिवंगत स्वामी सत्यप्रका ा जी और श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने वर्षों श्रम किया। आज के युग में जहाँ अंग्रेजी का प्रभुत्व है, वेदों को मानव समाज के लिए सुलभ किया है। एक प्रत्यक्षद र्ी के नाते मुझे याद है कि किस तरह एक-एक संस्कृत ाब्द पर गहराई से विचार-विम र्ा करने के बाद उसके अंग्रेजी ाब्द का चुनाव किया जाता था। मेरी सम्मति में प्रका ावीर जी का यह एक बड़ा योगदान है, उनका अविस्मरणीय और अमूल्य स्मारक भी।

मेरी पूज्या माताजी हम चारों भाइयों के भरे-पूरे समद्ध परिवार की मोह-ममता छोड़कर आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार में स्थायी निवास के लिए चली गई थीं और उन्होंने वहाँ वानप्रस्थ ले लिया। उन्हीं दिनों उनका प्रका ावीर जी से परिचय हुआ। माताजी उन्हें सहज रूप से पुत्रवत् स्नेह देने लगीं और यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर गहरा होता गया। जब पहली बार प्रका ावीर जी लोकसभा चुनाव के लिए प्रत्या ाी के रूप में खड़े हुए तो माताजी ने हमें पत्र लिखा कि वे उनके चुनाव अभियान में काम करने लिए ज्वालापुर से एक महीने के लिए चुनाव दौरे पर जा रही है, तो हमें कुछ ठीक नहीं लगा था।

हमें उनके स्वास्थ्य की चिन्ता थी। आयु भी उस समय उनकी अधिक थी, परन्तु माताजी जो संकल्प कर लेती थीं उस पर दृढ़ रहती थीं। उस समय हमारे मन में यह बात आई कि यह प्रका ावीर जी के विलक्षण व्यक्तित्व का ही आकर्षण है और उनके प्रति माताजी का सहज वात्सल्य। इसी प्रसंग में एक घटना का जिक्र करना चाहूँगा। यह बात माताजी ने तो नहीं बताई थी परन्तु प्रका ावीर जी ने स्वयं अपने एक भाषण में कहा था कि किस प्रकार चुनाव के दिनों में माताजी ने उन्हें एक डायरी भेंट की, जिसे घर जाकर खोलने पर पाया कि उसमें 100-100 रुपये के अनेक नोट रखे थे, साथ ही एक चिट पर उनकी सफलता के लिए कामना करते हुए उनको आ ाीर्वाद भी दिया था। उन दिनों रुपये की कीमत आज से कई गुना अधिक थी।

अन्त में मुझे वह दुःखदायी ााम नहीं भूलती, जब जयपुर से लौटते हुए रेल दुर्घटना में प्रका ावीर जी का प्राणान्त हुआ था और मैं भी अन्य लोगों के साथ दिल्ली रेलवे स्टे ान पर उनके पार्थिव ारीर को लेने गया था। उनका अचानक निधन आर्यजगत् और हिन्दी संसार के लिए वज्रपात के समान था। अगले दिन सुबह केनिंग लेन स्थित उनके निवास पर हजारों व्यक्तियों की भीड़ लगी हुई थी, जो उन्हें अन्तिम श्रद्धांजलि देने पहुँचे थे।

उनका ऐसे समय प्राणान्त हुआ, जब वे एक व्यक्ति न रह कर एक संस्था बन गये थे और मात्र अपने भव्य व्यक्तित्व, निर्मल चरित्र तथा ओजस्वी भाषणों के बल पर संसद में उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रभाव ाली सांसदों में माने जाते थे। विपक्ष में रहते हुए भी तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू उनका बहुत सम्मान करते थे। लोकसभा में हिन्दी के वर्चस्वी पक्षधर के नाते उन्हें राममनोहर लोहिया और सेठ गोविन्ददास के साथ सदा याद किया जाएगा। आर्यसमाज को तो पूरी तरह समर्पित थे ही, दिन-रात उन्हें आर्यसमाज के प्रचार की धुन रहती थी। उनकी पुण्य स्मति को नमन।

# भगतसिंह ही ाहीद-ए-आज़म क्यों?

*-श्री भगवान सिंह*

***भगतसिंह ने दे ा के लिए जो किया उसे कम करके नहीं आँका जा सकता लेकिन उनके चाहने वाले यह भूल जाते हैं कि ऐसा करने वाले क्रान्तिकारी तो और भी कई थे। कई बार उनका महिमामंडन करने के लिए लोग गाँधी को गलत ठहराने की भी कोि ा करते हैं। जिसकी वजह है जानकारी का अभाव।***

आधुनिक भारत के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों में भगतसिंह उसी समय ाामिल हो गए थे जब 23 मार्च 1931 को दे ा की आजादी के लिए उन्होंने फाँसी के फंदे को चूम लिया। तब से उनके आत्म-बलिदान को लेकर लगातार लिखा जाता रहा है। यह नि चय ही एक कृतज्ञ राष्ट्र का अपने एक महान ाहीद के प्रति कृतज्ञता का प्रमाण है।

भगतसिंह के आत्मोत्सर्ग और विचारों का सम्मान करने में मेरे जैसा व्यक्ति किसी भी भगत सिंह प्रेमी से पीछे नहीं रहता कि 'ाहीदे आज़म' कहलाने के हकदार सिर्फ भगत सिंह ही हैं और व्यक्ति या विचारक के रूप में वह मार्क्स और गाँधी के समकक्ष हैं। संभव है ऐसा कहने के कारण भगत सिंह प्रेमियों को मुझ पर गुस्सा आए, लेकिन मेरा निवेदन है कि जिस तरह हमें मार्क्स या गाँधी का मूल्यांकन करते समय अंधश्रद्धा का ि ाकार नहीं होना चाहिए, उसी तरह भगतसिंह के मूल्यांकन में भी हमें सच्चाई को अंधश्रद्धा से ओझल न करके, उसे सामने लाने का प्रयास करना चाहिए।

24 साल की उम्र में युवक जहाँ आमतौर पर यौवन की कुदरती माँग पर गहस्थी बसाने की इच्छा रखता है, वहाँ भगत सिंह जैसे युवक ने इस उम्र में दे ा की आजादी के लिए फाँसी के फंदे को अपनी नियति बना लिया। इसके लिए वह निस्संदेह हम सबकी दष्टि में आदर के पात्र हैं, लेकिन ऐसा करने में भगतसिंह न अकेले थे, न पहले। उनसे पहले भी दे ा की आजादी के लिए 16 साल के कि ाोर खुदीराम बोस, रामप्रसाद बिस्मिल, अ ाफाकउल्ला खान, रो ान सिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी जैसे युवक फाँसी पर चढ़ चुके थे। यही नहीं, 'हिन्दुस्तान सो ालिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' जिसके भगतसिंह भी सदस्य थे, के प्रणेता

माने जाने वाले चन्द्र ोखर आजाद भी उनकी फाँसी से पहले ही इलाहाबाद के एक पार्क में अंग्रेजों की गोलियों से ाहीद हो चुके थे। दे ा के लिए जान देने वाले इन सभी युवकों का जीवन, विवाह और रोमांस से अछूता रहा। 23 मार्च 1931 को भी लाहौर जेल में जब भगतसिंह को फाँसी दी गई, तब उनके साथ फाँसी पर लटकने वाले राजगुरु और सुखदेव जैसे दो और क्रान्तिकारी युवक भी थे। दे ा की आजादी के लिए जान देने वाले ये सभी ाहीद हमारे लिए समान रूप से अभिनंदनीय हैं, फिर ाहीदे आज़म या ाहीद ि ारोमणि का सेहरा सिर्फ भगत सिंह के माथे क्यों?

भगत सिंह के विचारों को प्रका ा में लाने के लिए जगमोहन और चमनलाल द्वारा 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' नाम से जो किताब तैयार की गई है, उसमें कुछ लेख ही भगतसिंह के नाम से हैं। क्या चार-पाँच लेखों की बदौलत कोई मार्क्स या गाँधी के समतुल्य विचारक हो सकता है? भगत सिंह और उनके साथी हिन्दुस्तान में जिस तरह की क्रान्ति और समाज निर्माण का सपना देख रहे थे, जो उनके लेखों से पता चलता है, वह पूरी तरह रूसी क्रान्ति और समाजवाद के मॉडल का था, लेकिन उनके विचार मार्क्सवाद या गाँधीवाद की तरह समग्र जीवन-द र्ान का रूप नहीं ले पाए। भगतसिंह के विचारों में राष्ट्रभाषा का सवाल, स्त्री-समस्या, साहित्य, संस्कृति, कला का सवाल, आध्यात्मिक विकास जैसे कितने ही मुद्दे गैरहाजिर हैं और इसे उनका दोष भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि 24 साल की उम्र तक वे जितना सोच सके थे, वही काफी था। गाँधी ने अपने चिंतन में इन विषयों को ाामिल किया था, इसलिए गाँधी के बराबर भगतसिंह को रखना अटपटा लगता है।

भगतसिंह अपने विचारों और कामों में अकेले नहीं थे, और वैसा कहने और करने में भी वह पहले नहीं थे। उनके साथ प्रतिबद्ध साथियों का दल था जिसके ज्यादातर सदस्यों ने समाजवाद का सपना देखते हुए ाहादत के रास्ते को चुना इसलिए इन सबका एक जैसा महत्व है। गाँधी ने भले ही कोई नया विचार न दिया हो, जैसा कि वह खुद भी कहा करते थे, लेकिन उन्होंने ऐसे काम जरूर किए जो मानव इतिहास में

नए थे और इस नज़र से वह कई कामों मे ंपहले और अकेले थे। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ खड़े होने वाले वह पहले व्यक्ति थे, और अकेले थे, तो भारत में 1917 में चम्पारण में किसानों पर होने वाले जुल्म के खिलाफ सरकारी आदे ा की अवज्ञा कर खुद को जेल जाने के लिए पे ा करने वाले वह पहले भारतीय नेता थे। असहयोग के रूप में पहली बार पूरे दे ा में राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा करने वाले पहले नेता गाँधी ही थे।

असल में भगतसिंह हों या गाँधी, किसी का भी मूल्यांकन अंधश्रद्धाव ा नहीं, तथ्यों की रो ानी में होना चाहिए। एक के कद को बढ़ाने के लिए दूसरे के कद को छोटा कर देना मूल्यांकन का सही तरीका नहीं है। गाँधी के बराबर किसी को अगर रखना ही है, तो सिर्फ भगतसिंह ही क्यों? रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्र ोखर आजाद आदि क्यों नहीं? यह सवाल भगत सिंह प्रेमियों से पूछा जाना चाहिए। यह भी विचारणीय है कि भगतसिंह के महत्व को बढ़ाने के लिए क्या दूसरे नेताओं, वि ोषकर गाँधी को खलनायक साबित करना वांछनीय है?

भगत सिंह प्रेमी जिस तरह गाँधी के साथ भगत सिंह के मतभेदों को रखते हैं, उससे यही लगता है कि वे गाँधी को खलनायक बताकर ही भगतसिंह को महानायक साबित करना चाहते हैं। गाँधी के साथ उनके मतभेदों की तुलना कर वे यही साबित करते हैं कि गाँधी का तो मुख्य काम ही था भगतसिंह आदि का विरोध करना और इसीलिए यह व्यक्ति भगत सिंह आदि की नज़र में बहुत काम का नहीं था। इन आरोपों के पीछे की सच्चाई क्या है, इसे जानकर ही हम दोनों के बारे में सही राय बना सकते हैं।

सबसे पहले तो हमें यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि गाँधी का सिर्फ भगत सिंह से मतभेद नहीं था, मतभेद था तो उन सभी क्रान्तिकारियों से जो दे ा को आजाद कराने के लिए हिंसा और आतंक में वि वास करते थे। अहिंसा को अपने जीवन द र्ान का अभिन्न अंग मानने वाले गाँधी ने इसे कभी पसंद नहीं किया। गाँधी हमे ाा कहते रहे कि वे अहिंसा के सवाल को आजादी से ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं।

गाँधी का अपना यह जीवन द र्ान था और इसीलिए उन्होंने हिंसा और आतंक के रास्ते पर चलने वाले क्रान्तिकारियों की दे ाभक्ति का आदर करते हुए भी, उनके साधनों का समर्थन नहीं किया। आज की तारीख में जब हम हिंसा बनाम अहिंसा के प्र न पर विचार करते हैं, तो गाँधी का मार्ग ही सही लगता है। भगतसिंह आदि रूसी क्रान्ति और रूसी साम्यवाद, लेनिनवाद के मॉडल पर भारत में क्रान्ति करना चाहते थे, लेकिन वह सब आज इतिहास की चीजें बन चुकी हैं, पूंजीवादी उपभोक्तावाद के सामने रूसी साम्यवाद ने दम तोड़ दिया और चीनी साम्यवाद ने पूंजीवाद को अपने अन्दर बसा लिया। आज वि व पैमाने पर गाँधी के अहिंसा–अपरिग्रह सिद्धान्तों के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। इसीलिए क्रान्तिकारी की हिंसक गतिविधियों का गाँधी द्वारा विरोध किया जाना सही था। ये क्रान्तिकारी भी अपने आखिरी दिनों में यह महसूस करने लगे थे कि उन्होंने हिंसा का मार्ग अपना कर सही काम नहीं किया। भगतसिंह को लेकर गाँधी पर जो सबसे बड़ा आरोप रहा है, वह यह कि उन्होंने भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी की सजा से बचाने के लिए अपने प्रभाव का जरा भी इस्तेमाल नहीं किया। 23 मार्च 1931 को जब इन्हें फाँसी दी गई, उसके कुछ ही दिनों पहले यानी 5 मार्च को गाँधी और वायसराय इर्विन के बीच एक समझौता हुआ था जिसके अनुसार 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान गिरफ्तार किए गए लाखों सत्याग्रहियों को जेल से छोड़ा गया था। तब से लेकर अब तक गाँधी पर भगतसिंह के कातिल होने का आरोप भगतसिंह प्रेमी लगाते रहे हैं। लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है। गाँधी ने काफी कोि ा की कि इनके मत्युदंड को किसी और सजा में बदल दिया जाए।

इसके बाद भी गाँधी चुप नहीं बैठे रहे। 24 मार्च को सुबह फाँसी दी जानी थी, गाँधी जी उस समय दिल्ली में ही थे। उन्होंने वायसराय को 23 मार्च को पत्र लिखकर इस पर फिर से विचार करने का अनुरोध किया, लेकिन उनकी अपील का कोई असर नहीं हुआ। भगतसिंह आदि के महत्व को उजागर करने के लिए जिस तरह गाँधी की लांछित छवि पे ा की जाती है, उसका कारण जानकारी का अभाव है।

# आजाद हिन्द फौज के सेनापति : नेताजी सुभाष

कु ाल नेतत्व करना एक कला है। कुछ लोग अपनी प्रतिभा एवं पुरुषार्थ से नेता पद को प्राप्त करते हैं। किसी को सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लेने से नेता नाम से सम्बोधित किया जाता है। कुछ लोग किसी संगठन या राजनैतिक पार्टी के मुखिया होने के कारण नेता कहे जाते हैं। नेता रेलगाड़ी के इंजन के समान होता है जिसके पीछे जनता खिंची चली आती है। लोग उसके एक-एक ाब्द पर सम्मोहित होकर धन की वर्षा करते हैं और नौजवान हँसते हुए अपने जीवन की आहुति देने को तैयार हो जाते हैं। नेता ही विविध प्रतिभाओं से सम्पन्न कार्यकर्ताओं को एक सूत्र में बाँधे रखता है। जिस संगठन या राष्ट्र का नेतत्व कु ाल हाथों में होगा वह दिनोंदिन उन्नति के चरम ि खर पर चढ़ता चला जाएगा। नेता में कौन-से गुण होने चाहिए, यजुर्वेद का एक मंत्र इस ओर संकेत करता है-

**भुवो यज्ञस्य रजस च नेता यत्रा नियुद्मिः सचसे ि वाभिः।**
**दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्धा जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।।**

अर्थात्- हे अग्ने (नेतत्व करने वाले जन) जब तू कल्याणकारी नीतियों, युक्तियों तथा मधुर एवं अपने उद्दे य की पूर्ति करने वाली वाणी से युक्त होगा। जब तेरा मस्तिष्क ज्ञान के आलोक से आलोकित एवं जीवन संयम सदाचार से ऊँचा रहेगा तो जनता तुझे सिर पर बिठा लेगी। सच्चा नेता वही है जो जनता का हृदय सम्राट् हो, जन-जन की जिह्वा पर जिसकी चर्चा हो, जो धीर-गंभीर और उदात्त विनम्रतादि गुणों से सुभूषित हो, जिसकी कथनी और करनी एक जैसी हो तथा जिसका व्यक्तिगत जीवन त्याग-तपोमय हो, ऐसे नेता को पाकर जनता कृतकृत्य हो जाती है।

हमारे जननायक सुभाष में ये गुण जन्मजात ही थे। माता के धार्मिक संस्कार और पिता के उच्च ि ाक्षा प्राप्त करने के

विचार दोनों का ही समावे ा उनके जीवन में लक्षित होता है। विद्यार्थीकाल में हैजा फैल जाने पर बच्चों की टोलियाँ बनाकर रोगियों की सेवा और घरों की सफाई करना, ि ाक्षा पूरी होते ही युवा वर्ग को राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेरित करना और कांग्रेस का सभापति बन जाना, विदे ाों में जाकर आजाद हिन्द फौज का नेतत्व करना तथा 'दिल्ली चलो' 'जय हिन्द' का उद्घोष कर अंग्रेजों से लोहा लेना आदि अनेक वि ाि ष्ट गुणों के कारण वे जन जन के नायक बन गये। आज भी नेता जी केवल सुभाषचन्द्र बोस को ही जाना जाता है।

## क्रान्तिकारियों की तस्वीर

बात तब की है, जब बंगाल विभाजन को लेकर आंदोलन जोरों पर था। सुभाषचंद्र बोस उस वक्त मात्र दस साल के थे। उन्होंने लोगों से सुना कि खुदीराम बोस और कन्हाईलाल दत्त हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए। सुभाष बाबू जिधर जाते दत्त और बोस की प्र ांसा सुनते। उन्होंने इन दोनों ाहीदों के चित्र अखबार से काटे और एक गत्ते पर चिपकाकर अपने कमरे की दीवार पर सजा दिए। वह रोज घंटों इन चित्रों को निहारते रहते थे। एक दिन उनके एक रि तेदार घर आए। सुभाष के कमरे में जब उन्होंने क्रांतिकारियों के चित्र देखे तो सुभाषचंद्र के पिता जानकी बाबू को सलाह दी- इन तस्वीरों को हटवा दो वरना किसी ने सरकार से ि ाकायत कर दी तो मुसीबत में पड़ जाओगे। जानकी बाबू ने चित्र हटवा दिए। सुभाष बाबू ने जब उन चित्रों को अपने कमरे में नहीं पाया तो परे ाान हो उठे। उनके पिता ने उन्हें बताया कि न चाहते हुए भी ऐसा करना पड़ा क्योंकि अंग्रेज इसे अपराध मानते हैं। सुभाष बाबू बोले- यह दे ा हमारा है और हम आदे ा विदे ियों का मानते हैं? क्या हम अपने घरों में उन लोगों के चित्र भी नहीं लगा सकते जिन्होंने हमारे लिए अपने प्राणों की आहूति दी है। यह तो जुल्म है। आज मुझे आजादी का महत्व समझ में आ गया है। इस घटना के बाद सुभाष बाबू पर दे ाभक्ति का रंग और गहरा हो गया। अंग्रेजी ाासन उन्हें ाूल की तरह चुभने लगा। उन्होंने तय कर लिया कि वह आगे चलकर जरूर स्वाधीनता आंदोलन में ाामिल होंगे।

# पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का योगाभ्यास

*–डॉ. रामप्रकाश*
*एम.एस–सी., पी–एच.डी.*

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी की कार्य–क्षमता आश्चर्यजनक थी, पर उससे भी अधिक विस्मयोत्पादक थी उनकी सहनशक्ति, जिसके कारण रुग्णावस्था में भी हँसते–हँसते कार्य करते रहते थे। उनकी विचित्र सहनशक्ति का एक कारण था योगावस्था। पण्डित जी ऋषि दयानन्द के कार्य को पूरा करने के लिए उन जैसा विद्वान्, तपस्वी और योगी बनने के लिए कृतसंकल्प थे। वैसे बाल्यावस्था से ही उस वैरागी का योग की ओर झुकाव रहा है। कहीं इकलौता बेटा साधु न बन जाए–इसी भय से तो माँ ने ताड़ना भी की थी। पर हृदय और जल का प्रवाह रुका नहीं करता। मत्युञ्जय दयानन्द के दर्शन के पश्चात् योग सीखने की इच्छा और भी तीव्र हो गई थी। परिणामस्वरूप कॉलेज के दिनों में योगाभ्यास आरम्भ कर दिया था। प्राणायाम भी बहुत करते थे। वे कहा करते थे कि संसार में सबसे उपयोगी वस्तु बिना मूल्य ही मिला करती है। इसलिए असाध्य रोगों की सर्वोत्तम औषधि वायु है तथा यह वायु प्राणायाम द्वारा रामबाण बन जाती है। इससे मनुष्य बलवान् तथा हृष्ट–पुष्ट बनता है। पण्डित गुरुदत्त मानते थे कि बिना योग के विद्या अधूरी है। अष्टाध्यायी, दर्शन शास्त्र आदि आर्ष ग्रन्थ इसीलिए पूर्ण हैं कि उनके कर्ता योगी थे। आत्मोन्नति के अभिलाषियों को वे कहा करते थे कि अष्टाध्यायी से लेकर वेद पर्यन्त पढ़ो तथा अष्टांग योग की साधना करो। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा–

"मुझे योगाभ्यास अवश्य करना चाहिए अन्यथा व्यर्थ बातों से कोई लाभ नहीं।" (21 जून, 1886)

"मुझे योगाभ्यास के लिए प्रयत्न करना चाहिए और जीवन में उपदेशक बनना चाहिए।" (26 जनवरी, 1887)

"अमरत्व! मेरा स्वप्न तुम हो! मेरा लक्ष्य तुम हो!! प्रभु, प्रेरणा दीजिए!!!" (30 जून, 1887)

अतः गुरुदत्त के सामने एक निश्चित लक्ष्य था। बस, वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जुट गए। समय–समय पर उन्होंने इस

प्रसंग में पंजिका में लिखाः
"मैंने योग की सामान्य क्रियाएँ कीं।" (25 जनवरी, 1887)
"दो आसन सीखे।" (8 जुलाई, 1887)
"मेरा व्रत का प्रथम दिवस"। (14 नवम्बर, 1887)
"प्रतिदिन एक घण्टा निरोध योग को समर्पित करने का प्रण।" (25 नवम्बर, 1887)
गुरुदत्त का कई योगियों से परिचय था। सन् 1889 में उन्होंने अपने परिचितों को एक सच्चिदानन्द नामक योगी की जानकारी दी थी कि वह पूर्ण आर्य हैं और नेपाल के पर्वतों में विचर रहें हैं। एक बार साईंदास के मकान पर एक योगी की प्र ंसा करते हुए कहा कि वह मुँह के रास्ते अपने पेट में दस गज लम्बी और सवा गज चौड़ी लट्ठे की धोती ले जा सकता है तथा इसे एक दो मिनट पेट में रख कर फिर निकाल लेता है। लाला जी ने कहा कि यह तो हठ योग है। आप कोई अपना अनुभव बताएँ, इस पर गुरुदत्त बोले– बस इतना ही कह सकता हूँ कि समाधि के समय मुझे जो प्रका ा दिखाई देता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस योगाभ्यास से मुझे ऐसे रहस्य स्पष्ट हुए जो बुद्धि और तर्क से परे हैं। योग सीखने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि जहाँ कहीं किसी योगी के निवास या पधारने का पता चलता, तो अनेक कार्य छोड़कर भी वहाँ पहुँचते और लाभ उठाते। मुनिवर की दैनिक पंजिका में 14 जनवरी, 1884 से 5 सितम्बर, 1888 तक लगभग तीस बार योगियों से मिलने, योगविद्या सीखने तथा अभ्यास करने का उल्लेख मिलता है। एक बार एक योगी पण्डित लाहौर पधारे। पण्डित जी नित्य चार बजे सायं उनके पास जाकर योग की ि ाक्षा लेते और धार्मिक विषयों पर वार्तालाप करते थे। उनके विषय में डायरी में लिखाः "आज मैं पण्डित जी को मिलने गया। मैं उन्हें मिलकर बहुत प्रसन्न होता हूँ क्योंकि वे योग सम्बन्धी विषयों से भी सुपरिचित दिखाई देते हैं।" (6फरवरी, 1887)
"मैं उनके पास गया और उनसे योग के 11 सूत्र पढ़े। मेरी वत्तियाँ प्रायः बाह्य संसार की ओर आकृष्ट होती हैं।" (8

फरवरी, 1887)

"मैं श्री ..... से मिलने गया। उसने मुझे बताया कि वह चाहता था कि कोई उसे वास्तविक योग विज्ञान की ि ाक्षा दें. ..... उसने देखा कि अनेक लोग उसे योग सिखाने के लिए तैयार हैं। उसने उनके प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया किन्तु अचानक साफा पहने एक व्यक्ति उसके समक्ष आया। उसने आकर कहा, क्या तुम वास्तविक योग सीखना चाहते हो? तुम्हें इसे अभी आरम्भ कर देना चाहिए। इसके दो प्रकार हैं, या तो योगियों की विधि से इसे करो अथवा अपने व्यवसाय में लगे रहकर अपनी जीवन प्रणाली को जारी रखते हुए योग की साधना करो। ..... मुझे कहा गया कि मैं ग्रीष्मावका ा में उसके पास जाऊँ और योग का अभ्यास करूँ। कल मुझे जल्दी उठना है तथा योगाभ्यास और गायत्री का जप करना है। अतः मुझे जल्दी उठना चाहिए और यथोचित योगाभ्यास करना चाहिए।" (9 फरवरी, 1887)

परन्तु गुरुदत्त विद्यार्थी ग्रीष्मकालीन अवका ा में पिताजी की बीमारी तथा कॉलेज के लिए धनसंग्रहार्थ ि ाष्टमण्डल के साथ जाने के कारण जा नहीं सके।

पण्डित जी रात्रि को चाहे कितनी ही देर से सोते, पर योगाभ्यास के लिए प्रातः चार बजे उठ जाते थे। प्रतिदिन प्राणायाम किया करते थे। मन मन्दिर में झाड़ू लगाने के लिए प्रायः आत्म-चिन्तन करते थे। प्रतिदिन की भाँति पण्डित जी 19 जनवरी, 1888 को सैर करने बाहर गए। रास्ते में अपने विषय में अचानक सोचने लगे कि कहीं कथनी और करनी में तो अन्तर नहीं है। इसी पर डायरी में लिखा है- "वि वास का एकमात्र परिणाम है- कर्म। जो (आर्य) समाजी केवल कहते हैं और आचरण नहीं करते, वे यह प्रकट करते हैं कि उन्हें वि वास ही नहीं हैं स्वामी जी कह सकते थे कि मैं सफल हुआ क्योंकि मुझे अपने कथन पर आस्था तथा वि वास है। तुम आचरण नहीं करते क्योंकि तुम्हें वि वास ही नहीं परन्तु केवल यह दिखाते हो कि तुम जो कहते हो, उस पर वि वास है।"

एक-एक ाब्द उनके सोचने के ढंग पर प्रका ा डाल रहा है।

यही कारण है कि उनकी कथनी व करनी एक थी। उन्हें सदैव आत्मिक उन्नति का ध्यान रहता था। उन दिनों आर्यसमाज मन्दिर लाहौर में एक रजिस्टर रखा हुआ था। प्रत्येक सदस्य से आ ा की जाती थी कि वह सप्ताह के अध्ययन एवं ुभ कार्यों का विवरण उसमें लिखे। पर यह कार्य प्रायः केवल गुरुदत्त विद्यार्थी ही करते थे। वे लिखा करते थे कि इस सप्ताह वेद, अष्टाध्यायी, उपनिषद् आदि का पाठ किया, अमुक स्थानों पर भाषण दिए.....।

अत्यधिक व्यस्तता योगसाधना में भारी रुकावट थी। इसका उदाहरण जालन्धर की एक घटना से मिलता है। बात 29 दिसम्बर, 1888 की है। गुरुदत्त आर्यसमाज के उत्सव पर पधारे थे और देवराज जी के मकान पर ठहरे हुए थे। प्रातः दो बजे उठकर स्नान किया और योग क्रिया में निमग्न हो गए। आठ बजे तक क्रम चलता रहा। महात्मा मुन ीराम द र्नार्थ पधारे। महात्मा जी ने इस प्रसंग में उनसे बात की तो कहने लगे, "जब तक एकान्त में न्योलीकर्म न कर लूँ तब तक अभ्यास नहीं कर पाता।" इस पर मुन ीराम ने सुझाव दिया कि यदि पूरा अभ्यास करना है तो लेख तथा व्याख्यान आदि सभी कार्य बन्द कर दीजिए। अन्यथा साधारण अवस्था तक ही रहिए। पण्डित जी ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया– "मुन ीराम जी, बात तो आपकी ठीक है। जानता मैं भी सब कुछ हूँ। पर न तो अभ्यास का आनन्द ही छोड़ा जाता है और न धर्मप्रचार सम्बन्धी आर्यपुरुषों का आग्रह ही टाले बनता है। (श्रद्धानन्द स्वामी, कल्याण मार्ग का पथिक, पष्ठ 195–6)

जब अनेक व्यस्तताओं और स्वाभाविक अनियमितता के कारण नियम भंग हो जाता तो उन्हें बहुत खेद होता। इसके लिए स्वयं को क्षमा न करते। कई बार प्रार्या चत करते थे। ऐसे संकेत उनकी डायरी से मिलते हैं:

"जैविक का एक नया पहलू..... क्या मेरे वि वास ने मेरे विवेक को इतना अधिक हर लिया है कि मैं अपने कर्त्तव्यों से पूर्णतया विमुख हो गया हूँ? हाँ, मुझे उन्हें अव य पूरा करना चाहिए।" (4 अक्टूबर, 1885)

"क्या मैं नियमित हो सकता हूँ? हे प्रभो! मुझे जो बनना

चाहिए, वह बना दीजिए।" (19 मई, 1887)
"आज मैं इतनी देर से उठा कि मेरा विचार आज निराहार रहने, बिना कम्बल सोने और ठण्डे वस्त्र पहनने का है।" (21 नवम्बर, 1887)
अधिक कार्य के कारण पण्डित जी रोगग्रस्त रहते थे। इससे भी नियम में बाधा पड़ती थी। फिर भी अभ्यास चलता रहा। उदाहरणार्थ 10 फरवरी, 1887 की पञ्जिका में लिखा- "मैं काफी जल्दी उठता हूँ और गायत्री का एक सहस्र जाप करता हूँ। सायं उसके पास जाता हूँ। योग द र्न का पहला अध्याय समाप्त।"
इस तप और साधना के कारण प्रभुभक्त को सन्ध्या-प्रार्थना में बहुत आनन्द आता और एकदम उनका ध्यान परमपिता में लग जाता। ऐसे संकेत भी उनकी डायरी से मिलते हैं। पण्डित जी ने 5 सितम्बर, 1888 को डायरी में लिखा था- "एक आनन्ददायिनी सन्ध्या ने, जिसमें मेरा चित्त आकर्षित हो खिंच गया, मन की कुछ अ ान्ति हर ली।"
पण्डित जी की योग में अच्छी गति थी। वे कई-कई घण्टे की समाधि लगा लेते थे। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वत्तियों का निरोध योग कहलाता है। इस दष्टि से भी पण्डित जी महान् योगी थे क्योंकि उन जैसा वत्तियों पर नियन्त्रण कौन कर सकता है? **'योगः कर्मसु कौ ालम्'** उनके जीवन का मूल मन्त्र था। '**अहिंसाप्रतिष्ठायां वैरत्यागः**' को उनसे अधिक अपने जीवन में सिद्ध किसने किया था? किसी से द्वेष करना तो उनका स्वाभाव ही न था। वे सबके मित्र थे। फिर भी उन्होंने अपनी योग-सम्बन्धी उपलब्धियों की चर्चा किसी से न की। इसका कारण यह था कि ऋषि दयानन्द सरस्वती योग-सिद्धियों के प्रद र्न के पक्ष में न थे। उनका विचार था कि य ा तथा धन के लोभ में ऐसे प्रद र्न करने से व्यक्ति योगभ्रष्ट हो जाता है। ऋषि के परम ि ाष्य गुरुदत्त ने इस आदे ा का अक्षर ाः पालन किया तथा किसी लेख अथवा भाषण में अपनी योग सिद्धियों का उल्लेख नहीं किया। ऐसे सच्चे योगी ही किसी दे ा के भूषण एवं गौरव होते हैं।

# वेत वस्त्रों में सन्यासी–महात्मा हंसराज प्रतिपादित पञ्चसकार

*–डॉ. भवानीलाल भारतीय*

1933 में अजमेर में ऋषि दयानन्द के निर्वाण की अर्द्ध ाताब्दी मनाई जा रही थी। उससे पचास वर्ष पूर्व 30 अक्टूबर 1883 को इसी अजमेर नगर में पुण्य लोक ऋषि दयानन्द ने परलोक प्रस्थान किया था। निर्वाण ाताब्दी के इस अवसर पर चतुर्वेद पारायण यज्ञ किया गया था। पं. युधिष्ठिर मीमांसक इसमें वेदपाठी के रूप में सम्मिलित हुए थे। आर्यसंन्यासी पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे। इन साधुओं की एक अनौपचारिक बैठक में चर्चा चली कि महात्मा हंसराज पर्याप्त वद्ध हो गये हैं। इन्हें अब संन्यास ले लेना चाहिए। विचार हुआ कि हम आर्य संन्यासियों में मूर्धन्य स्वामी सर्वदानन्द जी से निवेदन करने को कहा। स्वामी जी समझ गये और उन्होंने साधु मण्डल से कहा– ***"आप लोग हंसराज जी के त्याग, तप तथा कर्मण्यता को नहीं जानते। उनकी साधना व सेवावत्ति अपूर्व है। वे सफेद वस्त्रों में संन्यासी हैं। उन्हें किसी अन्य भगवा वस्त्र पहनकर संन्यासी बनने की आव यकता नहीं है।" साथ ही यह भी कहा कि वे महात्मा जी से कुछ उपदे ा ग्रहण अव य करें।***

नि चय के अनुसार संन्यासी मण्डली वेत वस्त्र मण्डित वेत मश्रु (दाढ़ी, मूँछ) धारी महात्मा जी की सेवा में उपदे ा हेतु प्रस्तुत हुई। महात्मा जी ने उन्हें सम्बोधित कर कहा। मैं पंजाब प्रान्त का हूँ जहाँ गुरु नानक के अनुयायी सिख लोग पर्याप्त हैं। ये पञ्च ककार अनिवार्य रूप से धारण करते हैं। इन पाँच वस्तुओं के नाम 'क' से आरम्भ होते हैं ये हैं– के ा, कंघा, कच्छा, कृपाण तथा कड़ा। नि चय ही ये बाह्य पदार्थ हैं। हम आर्यों को चरित्र निर्माण तथा नैतिक आचरण की वद्धि के लिए इन पंच सकारों का व्रत लेना चाहिए। पुनः पञ्चसकारों का नामोल्लेख किया।–ये हैं– 1. संध्या, 2. स्वाध्याय, 3. संस्कार, 4. सेवा और 5. सत्संग। इनका विस्तार करते हुए कहा–

1. **संध्या** – प्रतिदिन किये जाने वाले पंच महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत संध्या तथा स्वाध्याय को ग्रहण किया जाता है। प्रत्येक आर्य के दिन का आरम्भ संध्योपासना से होना चाहिए। ऋषि दयानन्द प्रतिपादित संध्योपासना के प्रमुख अंग निम्न है–ि ाखाबंधन–गायत्री मंत्रोच्चारण पूर्वक, आचमन, इन्द्रिय स्प र्ा, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण, मनसा परिक्रमा, उपस्थान, गायत्री जप, समर्पण वाक्य, नमस्कार मंत्रपूर्वक समाप्ति। आगे चलकर महात्मा नारायण स्वामी ने संध्याविधि की व्याख्या लिखी तो बताया कि अघमर्षण पर्यन्त क्रियाओं से संध्या करने वाला स्वयं की उन्नति करता है। इसमें ारीर ुद्धि, इन्द्रिय ुद्धि, प्राणों का व्यायाम तथा पापना ान आदि हैं। मनसा परिक्रमा का उद्दे य यह बताना है कि अन्यों के प्रति हमारा व्यवहार द्वेषरहित होना चाहिए। उपस्थान प्रकरण तो परमात्मा के प्रति स्वयं को निवेदित करना है। जो व्यक्ति संध्या नहीं करता वह साधु (सत्पुरुष) की मण्डली में रहने के योग्य नहीं है।

2. **स्वाध्याय** – संध्या के साथ स्वाध्याय का अनिवार्य सम्बन्ध है। स्वाध्याय के लिए ई वरीय ज्ञान वेद को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। तत्प चात् उपनिषद् आदि अध्यात्म ाास्त्र के आर्ष ग्रन्थ स्वाध्याय के लिए उपयोगी हैं। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, मनुस्मति आदि ऋषियों के लिखे वे ग्रन्थ हैं जो आर्ष इतिहास तथा धर्म के ग्रन्थ हैं। नियमपूर्वक स्वाध्याय करने के अनेक लाभ हैं। ऋषि पतंजलि ने स्वाध्याय को पाँच नियमों के अन्तर्गत स्थान दिया है। योगद ान पर व्यास मुनि का भाष्य है। इसमें स्वाध्याय का फल बताते हुए कहा है कि स्वाध्याय का फल **'इष्ट देवता संप्रयोग'** है जिसका अर्थ है– अपने लक्ष्य को प्राप्त करना। यह स्वाध्याय से ही सम्भव है।

3. **संस्कार** – संस्कारों का तीसरा स्थान है। ऋषियों ने मानव जीवन के ाारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, पारिवारिक तथा सामाजिक विकास के लिए गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कारों के क्रियान्वयन को अनिवार्य माना था।

तदनुसार, आ वलायन, पारा ार, गोभिल आदि सूत्रकारों ने विभिन्न गह्यसूत्रों की रचना कर संस्कारों के महत्त्व तथा विधियों का समावे ा संस्कार कृत्यों में किया है, यथा, गणे ा की पूजा, नवग्रह पूजा, यज्ञों में मांसादि की आहुतियाँ आदि। ऋषि दयानन्द ने परिष्कारपूर्वक सोलह संस्कारों की विधि लिखी जो सर्वथा आचरण योग्य हैं।

4. **सेवा** – महात्मा हंसराज प्रतिपादित सेवा कर्म चौथा संस्कार है। उनका कहना था कि ि ाक्षा प्रचार, नारी ि ाक्षण, रोगियों की सेवा उपचार आदि सेवा कार्य अव य करणीय है। भारत में ईसाई प्रचारकों के आगमन के साथ ही ये सेवा प्रकल्प आरम्भ किये गये परन्तु मि नरियों के सेवा कार्य में धर्मपरिवर्तन का गोपनीय लक्ष्य छिपा था। आर्य समाज ने दैवी आपद विपद–अकाल, दुर्भिक्ष आदि में निष्काम सेवा की जिसका अभीष्ट लाभ लोगों को मिला।

5. **सत्संग** – इसे महात्मा जी ने जाति संगठन का मुख्य आधार बताया। वैयक्तिक उपासना के साथ–साथ समाज मंदिरों में साप्ताहिक सत्संगों में जाना सामाजिक संगठन के लिए लाभप्रद है। ईसाइयों ने प्रचारित किया कि आर्य समाज के सत्संग ईसाइयों की Sunday Worship की नकल है। उनका आक्षेप था कि हिन्दू धर्म में सामूहिक उपासना के लिए कोई जगह नहीं थी, न है। ऋषि दयानन्द ने इसका प्रबल खण्डन इतिहास के उदाहरण देकर किया। इतिहास ग्रन्थों तथा पुराणों में भी अनेकत्र नैमिषारण्य जैसे जंगलों में अट्ठासी हजार ऋषियों के धर्म चर्चा के लिए एकत्र होने की चर्चा है। उपनिषदों में राजा जनक जैसे राजर्षियों द्वारा आहूत उन द ान गोष्ठियों का उल्लेख मिलता है जिनमें गार्गी आदि विदुषियों तथा याज्ञवल्क्य सद ा ऋषियों के उपस्थित होने तथा धर्म एवं द ान की गुत्थियों को सुलझाने के संकेत मिलते हैं। महात्मा हंसराज प्रतिपादित पञ्च सकार सर्वदा, सर्वथा आचरणीय हैं।

*3/5 ांकर कॉलोनी, श्रीगंगानगर*
*(राजस्थान)–335001*

## Balance Education Open Minds, Open Society

*-Sarvapalli Radhakrishnan*

All systems of education aim at the education of the whole individual, though in practice they lay undue emphasis on physical efficiency or intellectual alertness or spiritual poise. These are not exclusive of each other. They are essential ingredients of a true system of education.

The upanishads tell us that we should aim at pranaramam, the play of life, mana anandam, the satisfaction of mind, and santi samrddham, the fullness of tranquillity. The sickness of our society can be traced to one-sided development of education.

All knowledge is indivisible. Science and technology, literature and art, philosophy and religion are varied manifestations of the spirit of man. They do not contradict one another but complement one another. The spirit in the individual sits in judgement on nature, discovers its secrets and increases our knowledge of nature. In art and literature, the same spirit deals with the moods and passions, the intense experience of the human individual, especially his inner being. The same spirit probes into the mystery of the world, tries to understand a little of it.

**Ancient And Modern**

Science and technology are a dialogue of the human spirit with nature. Literature and art are a dialogue of the spirit with oneself. Philosophy and religion are a dialogue of the spirit with the supreme mystery which underlies the universe.

When people speak of a conflict between science and religion, they do not appreciate the spiritual character of science and the rational character religion. When properly understood, science and religion help each other.

In the name of science and rationalism, many of our societies have broken off their connection with past traditions. Their lives have become rootless. We have to grow our roots again. We have to combine ancient traditions with modern knowledge. If we wish to have an open society, we should have open minds.

The human being, through balanced education, should become a work of art capable of quality and beauty of its own, apart from any practical purpose to which skills and powers are put.

The development of the human individual makes for the uniquencess of the individual. This uniqueness contributs to the fellowship of human beings. It leads one to the unity of mankind. There is no contradiction between seeing the truth in solitude and engaging in human affairs.

## Balance Your Five Elements

*-Jagmohan Sachdeva*

Ancient literature tells us that the entire cosmos in made up of five elements—space or akasha, wind or vayu, fire or agni, water or jal, besides earth or prithvi,. Knowledge of these elements is very essential for diagnosis of all the problems in life whether these are body ailments, mind-related issues, financial or relationship issues or even spiritual aspects of life. Imbalance of any one of these elements in the body cause problems in life; by balancing these elements, health problems can also be resolved.

**Let us understand the basic attributes of these five elements:**

**Space or Akasha** : The basic attributes of space element is nonresistance. It defines the gap or space between two things. There should be perfect space maintained between our joints, relationships and throughts. If because of any reason or circumstance, the space reduces between the joints, the joints will resist and cause joint pain. If space reduces in our thoughts, it is even more dangerous and causes anxiety disorders, insomnia, violent and irritating behaviour. When there is no space in a relationship, everybody knows which way the relationship is headed.

**Wind or vayu** *:* The wind element is unstable in movement, and is cold and dry. There should be a perfect flow of wind in life. If the wind increases, it may cause Parkinsons, twitching of muscles, unstable relationships, and result in a mind that is always flickering. If the wind reduces, it may result in lack of creative ideas, no bowel movement, low blood pressure and laziness. Life will flow at a very low pace. At the workplace, there is less movement of goods and as a result, there will be fewer footfalls.

**Fire or agni** : The most important attribute of fire is heat which makes things mature, as well as helps in melting and purification. Fire has the power to transform—it can

change solids into liquids, and liquids into gas. Balanced fire can melt cysts in the ovary, fibroids in the uterus, and oesteophytes of the joint and spine. But if the fire increases, it may result in burning sensation in the chest or acidity, dark, burning urine. urticaria, anger and aggression. If the fire reduces, it causes lack of appetite with increased weight, high cholesterol levels, diabetes, and lack of creativity. Warmth disappears from relationships.

**Water or jal** : The main attribute of water is coldness. Water also helps to lubricate and has cohesive properties. Water is also very adjustable and can be poured into any container and it will take its shape. Dry skin or burning any where inthe body can be treated by enhancing the water element in the body. Excess of water anywhere in the body or organs causes swelling. Water element is essential in all relationships as all the adjustments and attachments and are its main attributes.

**Earth or prithvi** : Anything solid is earth. Earth is stable, heavy and rigid and has the power to hold or stop. If your hair falls, teeth are week, bones become brittle, bleeding doesn't stop, you are prone to have unstable relations and an unstable job. And if you are not able to gain weight, it means the earth element has to be increased. But if your weight is in excess, stools are hard, and you have a tendency to form nodes or tumours in the body, then you have to reduce the earth element.

If you can seek more knowledge on the elements and apply it to your life, it becomes easy to help yourself, your friends and family. You can also use therapies like acupressure, reiki, vaastu, colour therapy and other such healing modalities to balance you elements.

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE DONATIONS FROM THE FOLLOWING:

| | |
|---|---|
| Shri Charan Das Gupta,12,Urban Estate,Patiala, Punjab. | Rs. 500/- |
| Smt. Uma Monga, C2B/92C, Janakpuri, New Delhi-110058 | Rs.1100/- |
| Shri Chander Datt , DA/99B, Hari Nagar, New Delhi-110064 | Rs. 500/- |
| Shri P.K.Subnani, C2A/186, Janakpuri, New Delhi-110058 | Rs. 500/- |

Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under Section 80G of the Income Tax Act 1960 Vide No.DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010

Date of Pubn. : 28.2.2015 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Mar. 2015
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

**तनुपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपण।।**

**(यजु. 3/17)**

**ऋषि : अवत्सारः, देवता – अग्निः, छन्दः – त्रिष्टुप्**

अर्थ – हे सर्वरक्षक अग्ने प्रभो! तू हमारे ारीर का रक्षक है अतः हमारे ारीरों की भलीभाँति रक्षा कर। हे ई वर! आप वैद्य के समान आयुओं को बढ़ाने वाले हैं। हमें सुखपूर्ण उत्तम आयु दीजिए। हे प्रका ा स्वरूप तेज के दाता परमे वर! आप तेजस्वी हैं आप हमें भी अपना दिव्य तेज धारण कराइए। हे ज्ञानस्वरूप अग्ने प्रभो! मेरे ारीर में जो न्यूनता, कमी है आप ही मेरे लिए उसे पूर्ण कीजिए।

Oh self-effulgent God. You are the Protector of our corporal existence. Be gracious to protect our bodies and keep our souls in perpetual state of fitness in this birth. Oh Almightly Physician, You are the Extender of our earthly existence. Kindly grant us a long span of life, full of happiness and glory. Oh Infinite Luster of Divine Wisdom, you are the imparter of Luster of true knowledge, to all. It is through Your grace that men attain wisdom. Please give us the most excellent brilliance of right knowledge and wordly wisdom. Oh Lord! whatever we lack in this world physically, may that be remedied through you generosity.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58